कवि हस्तिरुचि और उनकी वैद्यक कृतियाँ

डॉ० राजेन्द्रप्रकाश भटनागर
उदयपुर (राज०)

जैन विद्वानों द्वारा विरचित वैद्यक-ग्रन्थों में हस्तिरुचि-कृत 'वैद्यवल्लभ' का अन्यतम स्थान है। यह ग्रन्थ उत्तर-मध्ययुगीन जैन यति एवं वैद्यों की परम्परा में बहुत समादृत हुआ। राजस्थान एवं गुजरात में इसका पर्याप्त प्रचार-प्रसार रहा। अरावली पर्वतमाला के पश्चिम में गुजरात और मारवाड़ का क्षेत्र परसार जुड़ा हुआ है। प्राचीन समय में दोनों क्षेत्रों में एक ही अपभ्रंश भाषा बोली जाती थी, जिससे कालान्तर में, सम्भवतः चौदहवीं शती के बाद, प्रदेशों व राज्यों की भिन्नता के आधार पर गुजरात में गुजराती एवं मारवाड़ में मरुभाषा विकसित हुई। परन्तु सांस्कृतिक आदान-प्रदान तो बहुत समय बाद तक प्रचलित रहा। मारवाड़ क्षेत्र के जैन यति-मुनि मारवाड़ एवं गुजरात में विचरण करते रहते थे। हस्तिरुचि का विहार भी पश्चिमी भारत में रहा। अतः उनका यह ग्रन्थ इस क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध रहा।

कवि-परिचय

हस्तिरुचि तपागच्छीय रुचि शाखा के श्वेताम्बर जैन यति थे। इन्होंने स्वयं को 'कवि' कहा है। "चित्रसेन पद्मावति रास' (गुजराती) के अन्त में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा दी है :

तपागच्छ में 'हीरविजयसूरि' हुए, जिन्होंने बादशाह अकबर को प्रतिबोध दिया था। उनके पट्टधर 'विजयसेन-सूरि' हुए, उनके पट्टधर 'विजयदेवसूरि' हुए। उनके गच्छ में 'कवियों की परम्परा में 'लक्ष्मीरुचि' कवि हुए, उनके शिष्य विजयकुशल' कवि हुए, उनके शिष्य 'उदयरुचि' कवि हुए। उदयरुचि के सत्ताईस शिष्य थे जो जप, तप और विद्या में निपुण थे। उनमें से एक 'हितरुचि' हुए। उनके ही शिष्य 'हस्तिरुचि' हुए। ये प्रकाण्ड विद्वान् और प्रसिद्ध चिकित्सक थे[1]। हस्तिरुचि की गुजराती भाषा में 'चित्रसेन पद्मावति रास' नामक काव्य-रचना मिलती हैं। इसकी रचना कवि ने अहमदाबाद में संवत् १७१७ (१६६० ई०) विजयादशमी के दिन पूर्ण की थी। 'हस्तिरुचि गणि' के अन्य ग्रन्थ भी मिलते हैं। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इनका ग्रन्थ-प्रणयनकाल संवत् १७१७ से १७३९ माना है[2]। परन्तु इनकी 'षडावश्यक' पर वि० सं० १६९७ में लिखी व्याख्या भी मिलती है। अतः इनका ग्रन्थरचनाकाल सं० १६९५ से १७४० तक मानना उचित होगा। निश्चितरूप से कहा नहीं जा सकता कि हस्तिरुचि किस क्षेत्र के निवासी थे। जैन-मुनि विहार करते हुए अन्यत्र भी जाते रहते हैं। कुछ इन्हें मारवाड़ क्षेत्र का मानते हैं। परन्तु इनका गुजरात-निवासी होना प्रमाणित होता है।

वैद्यक पर इनकी दो रचनाएँ मिलती हैं :

१. वैद्यवल्लभ और २. वन्ध्याकल्पचौपई।

---

१. जैन गुर्जर कविओ (गुज०), भाग २, पृ० १८५-८६ पर उद्धृत।
२. मो० द० देसाई, 'जैन साहित्यनो इतिहास', पृ० ६६४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैद्यवल्लभ[1]

यह ग्रन्थ मूलतः संस्कृत में पद्यबद्ध लिखा गया था। फिर उसका संभवतः लेखक (हस्तिरुचि) ने ही गुजराती में अनुवाद किया था। मूल-ग्रन्थ का रचनाकाल वि० संवत् १७२६ (१६६९ ई०) दिया है[2] :

"तेषां शिशुना हस्तिरुचिना सद्वैद्यवल्लभो ग्रन्थः।
रसनयनमुनिंदुवर्षे (६२७१ = १७२६)परोपकाराय विहितोयं ॥"

ग्रन्थ के अन्त में किसी-किसी पाण्डुलिपि में निम्न दो पद्य मिलते हैं[3], जिनसे ज्ञात होता है कि तपागच्छ के उदयरुचि हितरुचि आदि अनेक शिष्य हुए जो 'उपाध्याय' पदवी धारण करते थे। हितरुचि के शिष्य हस्तिरुचि हुए।

"श्रीमत्तपागणांभोजनायकेन नभोमणि।
प्राज्ञोदयरुचिर्नाम बभूव विदुषाग्रणी ॥ ५५ ॥

तस्यानेके महशिष्या **हितादिरुचयो** वस।
जगन्मान्यारुपाध्यायपदस्य धारकाऽभवन्" ॥ ५६ ॥

ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार मिलती है :

"इति श्रीमत्तपागच्छे महोपाध्याय **श्री हितरुचि**गणितच्छिष्यकविहस्तिरुचिकृत **वैद्यवल्लभे** शेषयोगनिरूपणा विलासः ॥" "इति श्री कविहस्तिरुचिकृतवैद्यवल्लभो ग्रन्थ सम्पूर्ण ॥ श्री ॥"

इस ग्रन्थ में आठ 'विलास' (अध्याय) हैं :

१. सर्वज्वरप्रतीकारनिरूपण (२८ पद्य)
२. स्त्रीरोगप्रतीकार (४१ पद्य)
३. कास-क्षय-शोक-फिरंग-वायु-पामा-दद्रु-रक्तपित्त-प्रभृति रोगप्रतीकार (३० पद्य)
४. धातु-प्रमेह-मूलकृच्छ्र-लिंगवर्धन-वीर्यवृद्धि-बहुमूत्र-प्रभृतिरोगप्रतीकार (२९ पद्य)
५. गुद-रोगप्रतीकार (२४ पद्य)
६. विरेचि-कुष्ठविषगुल्ममन्दाग्नि-पांडु-कामलोदररोगप्रभृतिप्रतीकार (२६ पद्य)
७. शिरःकर्णाक्षिभ्रममूर्च्छासंधिवात ग्रंथिवात रक्तपित्तस्नायुकादिप्रभृतिप्रतीकार (४२ पद्य)
८. पाक-गुटिकाद्यधिकार-शेषरोगनिरूपण-सन्निपात-हिक्का-जानुकम्पादि-प्रतीकार (४० पद्य)।

इसमें रोगानुसार योग का संग्रह है। सब योग अनुभूत, सरल और विशिष्ट हैं।

'प्रोक्तोऽय कवि हस्तिना' (१।१०), 'एतद् हस्तिकवेर्मतम्' (२।१, २), 'कविहस्तिना मतः' (२।१८), 'दत्तं सुहस्तिकविना' (६।२४), 'कारितं कविना' (२।३३, ३।१३), 'हस्तिना कथितं' (२।२९) आदि कहने से ज्ञात होता है कि ये योग हस्तिरुचि के अनुभूत और निर्दिष्ट थे। श्वेतप्रदर को इसमें 'स्त्रियों का धातुरोग' (२।१७) कहा गया है तथा रक्त-

---

१. यह ग्रन्थ मथुरा निवासी पं० राधाचन्द्र शर्मा कृत ब्रजभाषा टीका-सहित वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से सं० १९७८ में प्रकाशित हुआ था।

२. दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री ने लिखा है :
"यह ग्रंथ सं० १६७० में रचा गया था, ऐसा गोंडल के इतिहास में लिखा है, कर्ता का नाम हस्तिरुचि के स्थान पर हस्तिसूरि दिया है।" ('आयुर्वेदनो इतिहास', पृ० २४४)।

३. भण्डारकर ओरियण्टल रिचर्स इन्स्टीट्यूट, पूना के ग्रन्थागार में पाण्डुलिपि क्र० ५९९।१८९९-१९१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदर को केवल 'प्रदर' कहा गया है। कुछ लौकिक एवं पारिवारिक कार्यसिद्धि के प्रयोग भी दिए हैं—जैसे–'अथ श्वसुरगृहे तरुणी तिष्ठति तत्र प्रयोगः' यह सभी की योनि में धूप देने का योग है। पुरुषलिंगवृद्धिकर प्रयोग भी दिए हैं। वाजीकरणप्रयोगों में 'मदनवृद्धिपाक' (८।१५-१७) विशेष महत्वपूर्ण है। मेथी के पाक को 'मागधीपाक' (७।३०-३४) कहा है। विजया (५।४), अहिफेन (४।२०, ५।४) और अकरकरा (४।२३) का योगों में प्रयोग हुआ है। लिंगलेप' (४।१९-२०) 'कामेश्वरगुटिका' (४।२४-२५) अफीम, जायफल और जावित्री का योग है। 'नागभस्म विधि' (४।२८-२९) भी दी है।

उदर रोग में 'वज्रभेदीरस' (६।१-२) बताया है, परन्तु यह रसयोग नहीं है, केवल कष्ठौषधियाँ हैं। रस-योग भी दिए हैं, जैसे—सर्वकुष्ठारुरस (६।३-४), इच्छाभेदीरस (६।५-७) मन्दाग्निहा गुटिका (६।१७-१८)। 'स्रोतवृद्धि-रोग' से सम्भवतः वृद्धिरोग (आमवृद्धि) लिया गया है (५।२१)।

विभिन्न रोगों में इस ग्रन्थ के विषिष्ट एकौषधि-योग अत्यन्त उपयोगी हैं :

१.	एकान्तरज्वर (विषमज्वर) में	धत्तूरपत्रस्वरस और दही (१।१४)।
२.	गर्भधारकयोग	सगर्भामहिषीदुग्ध और अजामूत्र (२।९)।
३.	पुत्रप्रदयोग	ऋतुकाल मे पारसपीपलबीज, मिश्री, शर्करा (२।८)।
४.	गर्भपातरोधक	धाय के फूल, मिश्री (२।९)।
५.	गर्भवृद्धिकर	जाशुकी पुष्प-शीतल जल में पीसकर (२।१२)।
६.	गर्भपातकर	सोंठ व उससे पाँच गुना रसोन का क्वाथ (२।१८)।
		अलसी का तेल व गुड़ (२।२१)।
		अलसी का तेल व गुग्गुल (२।२२)।
७.	गर्भरोधक	पलाशबीज की राख, शीतल जल में (२।२७)।
८.	कास-श्वास-क्षय-हृद्रोग	स्नुहीदुग्ध व गुड़ (३।११)।
९.	श्वास-कास	वासास्वरस व मधु (३।१२)।
१०.	क्षयरोग	अर्कदुग्धभावित सैंधव लवण (३।१५)।
११.	रक्तपित्त रोग में	मृतताल (हरताल भस्म), सिग्रुरस के साथ दें (३।२९)।
१२.	,,	मिश्री मिला हुआ बकरी का दूध (२।३०)।
१३.	वाजीकरण	कृष्ण मुशलीकन्द-चूर्ण व गो घृत (४।८)।
१४.	प्रमेहरोग	पलाश के फूल व वंग भस्म (४।१२)।
१५.	नपुंसकता	बैंगन में रखकर पकाया हुआ हिंगुल (४।१५)।
१६.	उष्णवात मूत्रकृच्छ्र	सूर्यक्षार (शोरा) और मिश्री (४।१६)।
१७.	अश्मरी	यवक्षार, शर्करा, गाय का तक्र (४।१८)।
१८.	बहुमूत्र	भृंगराज व काले तिल, बासी जल से (४।२६)।
१९.	लिंगव्याधि	नागभस्म व मिश्री (४।२७)।
२०.	अर्शरोग	थूहरके दूध का लेप (५।९)।
२१.	,,	इन्द्रजव व बड़ के दूध का सेवन (५।९)।
२२.	भिलावे के विकार में (सूजन)	मक्खन और तिल; दूध और मिश्री, घी और मिश्री का लेप करें (५।१२)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. कृमिरोग	महानिम्बपत्रस्वरस का सेवन (५।१४)।
२४. कामला (पीलिया)	गधे की लीद और दही मिलाकर सेवन करें (६।२१)।
२५. शिरोव्यथा	आम्र के छाल को जल में पीस लेप करें (७।७)।
२६. मुखपिडिका (जवानी की फुंसियाँ)	माजूफल को चावल के धोवन में घिसकर लेप करें (७।२०)।
२७. दाँतों का हिलना	अनार की छाल के चूर्ण का मंजन (७।२३)।
२८. स्नायुकरोग (नाहरु)	गोन्दी की जड़ को मनुष्य मूत्र में पीसकर लेप करें (७।२४)।
२९. ,, ,,	महुएँ के पत्ते बाँधें (७।२५)।
३०. ,, ,,	आक के दूध का लेप करें (७।२६)।
३१. संखिया का विष	चौलाई का रस व मिश्री अथवा नींबू का रस सेवन करें (८।५)।
३२. पादव्रण (विवाई फटना)	मोम, राल, साबुन को मक्खन में मिलाकर लेप करें अथवा तिल और बड़ का दूध पीसकर लेप करें (८।२६)।

ग्रन्थ के अन्त में 'ज्वरातिसार नाशक गुटिका' 'मुरादिशाह' द्वारा निर्मित होने का उल्लेख है :

"क्षौद्रेण वा पत्ररसेन कार्या ज्वरातिसारामयनाशिनी वटी।
रूपाग्निबलवीर्यवर्द्धनी 'मुरादिसाहेन' विनिर्मिता वटी ॥ ४० ॥"

यह मुरादशाह औरंगजेब का भाई था, जो १६६१ ई० में मारा गया था।

शीघ्र ही यह ग्रन्थ लोकप्रिय हो गया था। इसकी लोकप्रियता इस तथ्य से ज्ञात होती है कि इस ग्रन्थ की रचना के तीन वर्ष बाद अर्थात् सं० १७२९ में मेघभट्ट नामक विद्वान् ने इस पर संस्कृत-टीका लिखी थी, इसका पुष्पिका में लिखा है :

"वि० सं० १७२९ वर्षे भाद्रपदमासे सिते पक्षे भट्टमेघविरचितसंस्कृतटीकाटिप्पणीसहितः सम्पूर्णः ॥"

यह टीकाकार शैव था। इसके प्रपितामह का नाम नागरभट्ट, पितामह का नाम कृष्णभट्ट और पिता का नाम नीलकण्ठ दिया है। मेघभट्ट की संस्कृत टीका के अतिरिक्त इस पर हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती में 'स्तबक' और 'विवेचन' लिखे गये हैं।

वन्ध्याकल्पचौपई

नागरी-प्रचारिणी सभा के खोज-विवरण पृ० ३३ पर इनकी इस रचना का उल्लेख है। इसके अन्तिम भाग में यह लिखा है—'कहिं कवि हस्ति हरिनों दास।' अतः सम्भवतः यह किसी अन्य की रचना भी हो सकती है। वस्तुतः हस्तिरुचि जैनयति-मुनियों की परम्परा में ऐसी विभूति हैं जिनका आयुर्वेद के प्रति महान् योगदान है।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org